यज्ञ से जीवन को स्वर्गमय बनावें

यज्ञ पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। जहां प्रतिदिन यह यज्ञ होते हैं, वहां का वातावरण शुद्ध - पवित्र हो जाता है। रोगाणु नष्ट हो जाते हैं तथा सब प्रकार के कष्ट कलेषों से मुक्त हो कर प्राणी का जीवन स्वर्गिक आनन्द से भर जाता है। इस बात को मन्त्र इस प्रकार स्पष्ट कर रहा है :
भू ताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृंहन्तदुर्या:पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यं रक्ष॥11॥
॥ यजुर्वेद 1.11॥

विगत मन्त्र में यज्ञ के शेष महत्व को दर्शाया गया था। इस में बताया गया था यह न केवल प्रसाद ही है बल्कि सुख समRद्धि को बजने वाला भी होता है। इस का ही विस्तार करते हुए यहां सात बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। मन्त्र बता रहा है कि

मन्त्र जीव को सम्बोधन करते हुए कह रहा है कि मैं तुझे प्राणी मात्र के हित के लिए ग्रहण करता हूं। मन्त्र ने इस प्रकार प्रकट किया है कि हम जो भी कार्य करते हैं उसमें सार्वजनिक हित की बात होना चाहिये। केवल एक व्यक्ति का जिस में हित होता हो एसा काम करने का कोई लाभ नहीं है। इसलिए ही मन्त्र कह रहा है कि " मैं तुम्हें प्राणी मात्र के लिए ग्रहण करता हूं " अर्थात् जीव को सदा प्राणी मात्र के हितार्थ ही कार्य करना चाहिये।

मन्त्र आगे उपदेश करता है कि मैं तुझे इसलिए ग्रहण नहीं कर रहा इस का यहभाव नहीं है कि मैं तुझे कुछ देना नहीं चाहता। मैं तुझे वह सब कुछ देना चाहता हूं , जिस की तुझे आवश्यकता है। मैं तुझे ग्रहण ही देने के लिए कर रहा हूं। न देने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैंने तुझे ग्रहण किया है तो इस लिए कि तेरे अन्दर परोपकार की भावना है, तेरे अन्दर दूसरों की सेवा, दूसरों की सहायता की भावना है। तेरे अन्दर यज्ञ की भावना है। इस का भाव ही परोपकार होता है, दूसरों की सहायता होता है । सहायता भी एसी कि हम जिस की सहायता कर रहे हैं, उसको हम जानते ही नहीं, इसलिए उस पर कभी किसी प्रकार का एहसान न जता सकें। यह ही कारण है कि हम किसी को भी भोग के लिए नहीं योग के लिए ही ग्रहण करते हैं, अपने मित्रों की श्रेणी में रखते हैं।

प्रभु ने हमारे भोग के लिए जो भी पदार्थ बनाए हैं, जो भी फ़ल-फ़ूल या वनस्पतियां पैदा की हैं , वह सब जीव मात्र के लिए हैं। उनका हम उपभोग अवश्य ही करें किन्तु मन्त्र आदेश दे रहा है कि हम इन भोगों

को त्याग भाव से भोगें न की स्वार्थ भाव से। भाव यह है कि प्रभु ने हमारे उपभोग के लिए यह जो फ़ल पैदा किये हैं, यह जो फूल पैदा किये हैं, यह जो वनस्पतियां पैदा की हैं, यह सब जीव मात्र के उपभोग के लिए हैं। जितना उदर पूर्ति के लिए आवश्यक है, हे जीव ! उतना ही तेरा है, उतने का ही उपभोग कर, इतने से ही तृप्ति कर। शेष जो कुछ है, वह अन्य प्राणियों के लिए है, लालच मत कर , इसे संग्रह न कर।

यह यज्ञ ही है कि जो सब का कल्याण करता है, सब को सुखी बनाता है तथा स्वर्गिक आनन्द देता है। इससे मनुष्य का ही नहीं जीव-जन्तुओं का भी पौषण होता है। परोपकार का नाम य&a है, दूसरे की सेवा का नाम य&a है। इसलिए ही तो कहा गया है कि जो प्रतिदिन य&a करता है उसके सब और स्वर्ग ही स्वर्ग होता है। उसके आस पास का परयावरण शुद्ध व पवित्र हो जाता है। रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जब व्याधियों का नाश हो जाता है तो शेष रहा सुख। बस यह ही उसे मिलता है। इस का नाम ही स्वर्ग है। अत : य&aशील प्राणी को सदा स्वर्गिक आनन्द मिलता है।

यज्ञ करने वाले प्राणी का उभयलोक सदा कल्याण कारक होता है। हम जानते हैं कि जब देवताओं तथा राक्षसों में उत्तमता के लिए प्रतिस्पर्धा हो गयी तो परमपिता ने राक्षसों के हाथ कुहनी के पास से बांध दिये ताकि मुडें नहीं तथा उनके सामने खाना परोस दिया ओर खाने का आदेश दिया। राक्षस तो होते ही राक्षस हैं। वह अपना भोजन दूसरे को कैसे खिलाने का साहस करते ? दूसरे से सहयोग की तो उनमें कभी भावना ही नहीं होती। बस भोजन का ग्रास उठाया तथा ऊपर ले जा कर अपने मुख के सामने कर के छोड दिया। परिणाम-स्वरुप कहीं कुछ थोडा सा मुंह में गया। शेष का कुछ भाग गालों पर गया, कुछ आंखों में , कुछ कानों में। इस प्रकार कोई लंगूर बन गया, कोई कुत्ता। इन्हें देखने वाले हंसने लगे ।

जब इस प्रकार से ही देवों को बांध कर भोजन दिया गया तो यह देव लोग एक दूसरे के सामने बैठ गए तथा एक दूसरे को भोजन करवा कर अपने आप को भी taRप्त किया तथा दूसरों को भी किया और किसी प्रकार की हानि भी नहीं हुई। बस इस का नाम ही य&aमय जीवन है। इस का नाम ही स्वर्गिक आनन्द है। इसलिए वेद मन्त्र कहता है कि केवल अपने तक ही सीमित न रहो बल्कि अन्यों के सुखमय जीवन बनाने के साधन भी पैदा करो।

इस यज्ञ से हमारे परिवार के साथ होने से हमारे घर मजबूत हो जाते हैं। हमारा सामाजिक जीवन अटूट हो जाता है। जहां प्रतिदिन य&a होता है, वहां भोग की प्रवRति आ ही नहीं पाती, क्योंकि यह भोग प्रवRति का विनाषक होता है, प्रतिबन्धक होता है। इस प्रवRति के प्रतिबन्ध से ही हमारे शरीर, हमारे मन तथ हमारे मस्तिष्क दRZ बनते हैं। जब घर में याग्यमान भावना न होगी तो परिवार के सदस्य अपने स्वार्थ को ही सामने रखेंगे, जिस से घर में सदा लडाई-झगड़ा, कलह-क्लेष ही बना रहेगा। एसी अवस्था में चित का शान्त होना ,प्रसन्न होना तो सम्भव ही नहीं होता, सब की खुशी गायब हो जाती है। इस का नाम ही नरक है। इस अवस्था में अन्त कैसे होता है ? पूरे परिवार के नाश के रुप में।

प्रभु कहते हैं कि मैं उस व्यक्ति को ही प्राप्त होता हूं जिस में य&avRति हो। हमारा यह जो शरीर है वास्तव में यह पRथिवी के समान है। हम इसे एसा भी कहते हैं कि इस शरीर में हमने प्रत्येक शक्ति का विस्तार किया है। प्रभु कहते हैं कि मैं उस विशाल हRदय रुपी अन्तरिक्ष को हमारी इस यज्ञ रूपी अनुकूलता के कारण, उत्तमता के कारण प्राप्त करता हूं। भाव यह है कि इस के कारण जब पवित्रता आ

जाती है तो वह प्रभु उस में आ कर विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं य&a की इस भावना से हमारे हृRदयों में विशालता आती है। परोपकार व दूसरे के सहयोग की इच्छा शक्ति आती है।

जो जीव यज्ञमय जीवन वाला होता है उसके लिए प्रभु प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हमारे इस मानव शरीर रुपि भवन की नाभि यह यज्ञ है। यही इसका केन्द्र है तथा परमपिता परमात्मा ने ही हमें इसमें स्थापित किया है। गीता भी तो इस तथ्य पर ही प्रकाश डालते हुए कह रही है कि " इस यज्ञ से तुम फ़लो-फ़ूलो। यह यज्ञ तुम्हारी सब मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला हो। भाव यह कि इससे ही सब कामनाएं, सब इच्छाएं पूर्ण होती हैं।

आदीनता से युक्त बनें। आदीन पुरुष ! मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूं। तूंने जो कल्याण के कार्य किए हैं, उस के कारण तेरा अदिति के पास निवास होना आवश्यक है। इस कारण ही मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूं, उसकी गोद में दे रहा हूं। इस अदिति की गोद में जा कर तूं आदीन बनता है, इस की गोद में जा कर तूं दिव्य गुणों का स्वामी हो जाता है। हां ! जब तूं हीन भावना से ऊपर उठ गया है तो इस का भाव यह नहीं कि मैं अभिमानी बनकर, घमण्डी बन जाऊं। इसका भाव है कभी किसी के आश्रित न रहना, रोगी न रहना आदि। प्रभु कहते हैं कि हे यज्ञमय ! इस से (घमंड) बचने से ही मेरे में आदीनता तथा विनीतता की सुन्दर भावना आ जाती है। इस शरीर में इनका समन्वय हो जाता है।

प्रभु इस मन्त्र के माध्यम से हमें उपदेश करते हुए मन्त्र के अन्तिम भाग में हमें उपदेश कर रहे हैं कि हे जीव ! तूं आगे बँटने वाला है। तूंने इसका स्वयं प्रयोग करके इस के लाभ को भी आत्मसात कर लिया है तो भी तूं सदा इस बात को याद रखना कि तूंने इस हव्य की रक्षा करनी है। इसे बनाए रखना है। तूंने अपने जीवन को खूब यज्ञमय बनाया है। इसे यज्ञ मय ही बनाये रखना। इस वाक्य को अपने लिए आदर्श वाक्य ही बनाए रखना। इस आदर्श वाक्य के आधार पर ही तूं सदा परोपकार करते रहना, दूसरों की सहायता करते रहना, दूसरों का मार्ग-दर्शन करते रहना तथा य&aमय जीवन से कभी अलग मत होना।

डॉ.अशोक आर्य
पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से.७ वैशाली
२०१०१२ गाजियाबाद उ.प्र.भारत
चलभाष ९३५ ४८ ४५ ४२६ व्हट्स एप्प ९७१८५ २८०६८
E Mail ashokarya1944@rediffmail.com